भारत की जीवंत कला परंपराएँ 8

भारत में विभिन्न पारंपरिक कलाएँ हैं जो गाँव-शहर, रेगिस्तान, पहाड़ तक फैली हैं। ये कलाएँ आज भी जनमानस द्वारा अपनाई जा रही हैं। अब तक, हमने कला का अध्ययन समय के सापेक्ष किया है। कला अवधि का नामकरण किसी स्थान या राजवंशों के नाम पर किया गया है, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों पर कई वर्षों तक शासन किया। परंतु आम लोगों का क्या? क्या वे रचनात्मक नहीं थे? क्या उनके आसपास कोई कला मौजूद नहीं थी? राजदरबार या कला संरक्षकों के पास कलाकार कहाँ से आते थे? शहरों में आने से पहले वे कहाँ कार्य करते थे? या अभी भी वे अज्ञात कलाकार कौन हैं जो दूर रेगिस्तान, पहाड़, गाँव और ग्रामीण क्षेत्र में हस्तशिल्प बना रहे हैं, जिन्होंने कभी भी कला विद्यालय अथवा डिज़ाइन संस्थान या यहाँ तक कि किसी विद्यालय से औपचारिक शिक्षा भी नहीं ली।

भारत में हमेशा स्वदेशी (देशज या स्थानीय) ज्ञान का भंडार रहा है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण (स्थानांतरित) होता रहा है। प्रत्येक पीढ़ी में कलाकारों ने उपलब्ध सामग्री और तकनीक से सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों का निर्माण किया है। असंख्य विद्वानों ने इन कला रूपों को लघुकला, उपयोगिता कला, लोक कला, जनजातीय कला, जनसाधारण कला, संस्कार कला, शिल्प और इसी तरह के कई नाम दिए हैं। हम जानते हैं कि ये कला अति प्राचीन काल (स्मरणातीत) से अस्तित्व में हैं। पूर्व-ऐतिहासिक काल के भित्ति चित्र और सिंधु काल के मिट्टी के बरतनों, टेराकोटा, कांस्य, हाथी दाँत की कलाकृतियों के उत्कृष्ट उदाहरण हम देख सकते हैं। प्रारंभिक इतिहास और उसके बाद के समय के दौरान, हमें हर जगह कलाकारों के समुदाय के संदर्भ (निशान) मिलते हैं। उन्होंने बरतन और कपड़े, आभूषण और अनुष्ठान या मन्नत की मूर्तियों का सृजन किया है। उन्होंने अपनी दीवारों और फ़र्श को सजाया और कई कलात्मक कार्य अपनी दैनिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किए। इसके साथ ही स्थानीय बाज़ारों में अपने कलाकृतियों की आपूर्ति भी की। उनकी रचनाओं में स्वाभाविक (प्राकृतिक) सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति है। इनमें प्रतीकात्मकता, रूपांकन का विशेष उपयोग, सामग्रियों,

© NCERT not to be republished

रंग और बनाने की विधियों का विशिष्ट उपयोग लोक कला के निर्माण में किया जाता है। लोक कला और शिल्प के बीच एक पतली रेखा है। इन दोनों में रचनात्मकता, अंत:प्रेरणा (स्वाभाविक), आवश्यकताएँ और सौंदर्यबोध सम्मिलित हैं।

आज भी कई क्षेत्रों में हमें ऐसी कलाकृतियाँ देखने को मिलती हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में, भारत और पश्चिम (यूरोप) में एक नया परिप्रेक्ष्य आधुनिक कलाकारों के मध्य उत्पन्न हुआ जब उन्होंने अपनी रचनात्मक गतिविधियों के लिए अपने आसपास की लोक कला (पारंपरिक कला) को प्रेरणा के स्रोत के रूप में स्वीकार किया। भारत में स्वतंत्रता के बाद हस्तकला उद्योग का पुनरुद्धार हुआ। यह क्षेत्र व्यावसायिक उत्पादन के लिए भी संगठित हो गया। इस कला ने एक विशिष्ट पहचान भी प्राप्त की। राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के गठन के साथ, उनमें से प्रत्येक ने अपने संबंधित राज्य के विक्रय केंद्र (एम्पोरिया) में अपनी विभिन्न अद्वितीय कलाओं और उत्पादों का प्रदर्शन किया है। भारत की कला और शिल्प परंपराएँ भारत के पाँच हज़ार सालों से अधिक की मूर्त (वास्तविक) विरासत के इतिहास को प्रदर्शित करती हैं। हालाँकि हम इनमें से कई को जानते हैं, लेकिन हम उनमें से कुछ के बारे में यहाँ चर्चा करेंगे। मुख्य तौर पर, धार्मिक या अनुष्ठानिक कृतियों में समृद्ध प्रतीक हैं और साथ ही उपयोगी और सजावटी सामग्री जिन्हें हम दिनचर्या में उपयोग में लाते हैं, उनका निर्माण भी किया जाता है।

चित्रकारी परंपरा

मिथिला या बिहार की मधुबनी पेंटिंग, महाराष्ट्र की वरली पेंटिंग, उत्तरी गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश की पिथोरो पेंटिंग, राजस्थान की पाबूजी की फड़ पेंटिंग, नाथद्वारा की पिछावई, मध्य प्रदेश की गोंड और सांवरा पेंटिंग, ओडिशा और बंगाल की पटचित्र आदि चित्रकला (लोक कला) के कुछ उदाहरण हैं। यहाँ, उनमें से कुछ पर चर्चा की गई है।

मिथिला कला

मिथिला कला सबसे प्रसिद्ध समकालीन चित्रकला रूपों में से एक है जिसका नामकरण मिथिला प्रदेश के नाम पर आधारित है। मिथिला का प्राचीन नाम विदेह था और ज़िला मधुबनी के नाम पर इसे मधुबनी चित्रकला भी कहा जाता है। यह एक (व्यापक रूप से) मान्यता प्राप्त प्रसिद्ध लोक कला परंपरा है। यह माना जाता है कि सदियों से इस क्षेत्र में रहने वाली महिलाएँ औपचारिक अवसरों, विशेष रूप से विवाह के अवसर पर अपने मिट्टी के घरों की दीवारों पर आकृतियों से अलंकरण करती हैं। इस क्षेत्र के लोग इस कला की उत्पत्ति का समय राजकुमारी सीता और भगवान श्रीराम के विवाह से मानते हैं।

© NCERT not to be republished

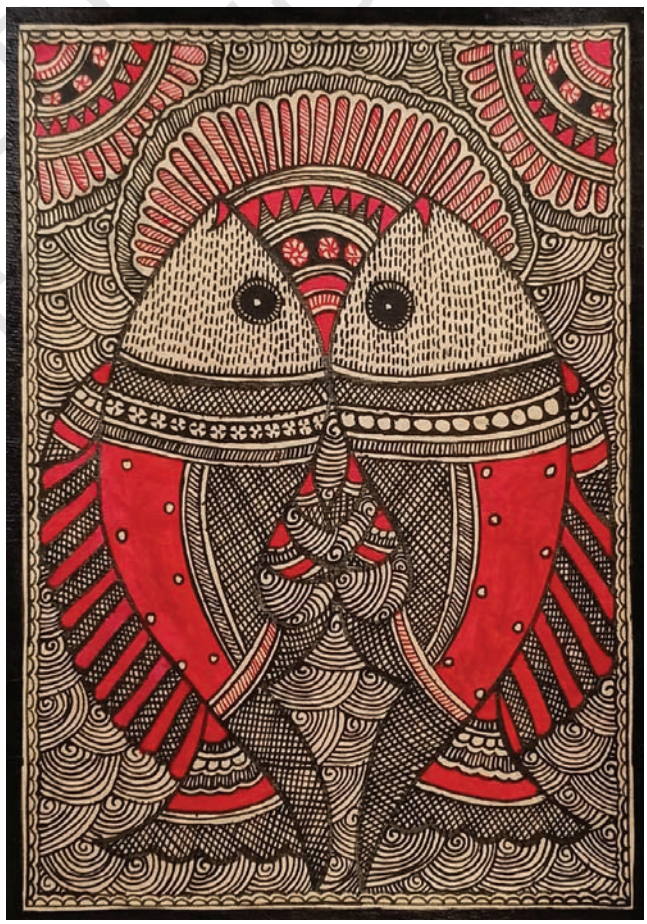

चमकीले रंगों की विशेषता वाले इन चित्रों को मुख्य रूप से घर के तीन क्षेत्रों में चित्रित किया जाता है— केंद्रीय या बाहरी आँगन, घर का पूर्वी भाग (जो कुलदेवी का निवास स्थान है), आमतौर पर, काली और अलग से एक कमरा (जो दक्षिणी भाग में स्थित हो), जिसमें सबसे महत्वपूर्ण चित्र का चित्रण किया जाता है। इस कमरे में विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित देवता के चित्र का चित्रण किया जाता है। पशु या महिलाओं की काम करते हुए छवियों को जैसे कि पानी के बरतन ले जाती हुईं, सूप से अनाज साफ करती हुईं इत्यादि, को बाहरी केंद्रीय प्रांगण में चित्रित किया गया है। भीतर के बरामदे (पारिवारिक देवस्थान या गोसाईं का स्थान है), वहाँ गृह देवता और कुलदेवता का चित्रण किया जाता है। हाल के दिनों में वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए कपड़े, कागज़, बरतन आदि पर इस प्रकार के कई चित्रांकन किए जा रहे हैं।

सबसे असाधारण और रंगीन चित्रण घर के उस हिस्से में किया जाता है जिसे कोहबर घर या भीतरी कमरा नाम से जाना जाता है, जिससे कोहबर की खूबसूरती और अधिक बढ़ जाती है। कमरे के नए पलस्तर पर एक संपूर्ण खिला हुआ कमल अपने डंठल के साथ दीवारों पर चित्रित किया जाता है। इसके साथ ही देवी-देवताओं का भी चित्रण किया जाता है।

अन्य विषयों में *भागवत पुराण*, *रामायण*, शिव-पार्वती की कहानियाँ, दुर्गा, काली और राधा-कृष्ण की रास-लीला के प्रसंग भी चित्रित किए जाते हैं। मिथिला के कलाकारों को रिक्त (खाली) स्थान पसंद नहीं हैं। वे समस्त स्थानों को पक्षियों, फूलों, जानवरों, मछली, साँप, सूर्य और चंद्रमा जैसे प्रकृति के तत्वों से अंकित करते हैं, जिसमें अकसर प्रतीकात्मक अर्थ होता है। यह प्रेम, जुनून, उर्वरता, अनंत काल, कल्याण और समृद्धि का प्रतीक है। महिलाएँ बाँस की टहनियों में कपास, चावल का भूसा या रेशों को लगाकर चित्रण करती हैं। पूर्वकाल में वे खनिज, पत्थर और जैविक सामग्री जैसे कि फालसा और कुसुम के फूल, बिल्व के पत्ते, काजल, हल्दी आदि से रंग बनाती थीं।

वरली चित्रकला

वरली समुदाय उत्तरी महाराष्ट्र के पश्चिमी तट के आसपास के उत्तरी सह्याद्री क्षेत्र में विशाल संख्या में निवास करते हैं। यह क्षेत्र ठाणे ज़िले में है। विवाहित महिलाएँ चौक नामक चित्राकंन में एक केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, जहाँ विशेष अवसरों पर वह चौक बनाती हैं। यह शादी, प्रजनन, फ़सल और बुवाई-कटाई के रीति-रिवाज़ों से संबंधित है। चौक देवी माँ पालघाट की आकृति पर आधारित होती है, जिसे मुख्य रूप से प्रजनन की देवी के रूप में पूजा जाता है जो मकई की देवी, कंसारी का प्रतिनिधित्व करती है।

© NCERT not to be republished

कंसारी देवी को एक छोटे वर्ग के फ्रेम में लगाया जाता है जिसके बाहरी किनारों को नुकीले कड़ी (शेवरॉन) से सजाया गया है। यह बाहरी किनारा हरियाली देवता, अर्थात् पौधों के देवता का प्रतीक है। कंसारी देवी के प्रहरी और अभिभावक की कल्पना, एक बिना सिर वाले योद्धा के रूप में की जाती है। वे घोड़े पर सवार या उन पर खड़े होते हैं जिनके गले से पाँच मकई के पौधे उगते हुए चित्रण किया जाता है और इसलिए इन्हें पंच सिर्या देवता (पाँच सिर वाले भगवान) कहा जाता है। यह खेत्रपाल या खेतों के संरक्षक का भी प्रतीक माना जाता है।

वरली चित्रकार अपने आसपास रोज़मर्रा के क्रियाकलाप, मुंबई जीवन, चलती बसें, मछली पकड़ना, खेती, पौराणिक कहानियों के किरदार, नृत्य आदि का चित्रण करते हैं। इन चित्रों को पारंपरिक रूप से चावल के आटे से अपने घरों के भूरंगों के दीवारों पर चित्रित किया जाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, प्रजनन क्षमता को बढ़ावा देने के लिए, बीमारियों को रोकने के लिए, मृतकों को संतुष्ट करने के लिए और आत्माओं की माँगों को पूरा करने के लिए इन चित्रों का चित्रण किया जाता है। एक बाँस की छड़ी के एक सिरे को चबाकर तूलिका के रूप में उपयोग किया जाता है।

गोंड चित्रकला

मध्य प्रदेश के गोंड की लोक कला मध्य भारत की एक विख्यात चित्रकला है। वे प्रकृति की पूजा करते थे। मंडला के गोंड और इसके आसपास के क्षेत्रों में जानवरों, मनुष्यों और वनस्पतियों के रंगीन चित्रों का चित्रण किया जाता है। ज्यामितीय आकार के धार्मिक चित्रों को झोपड़ियों की दीवारों पर चित्रित किया जाता है। इन चित्रों में कृष्ण को गायों और गोपियों से घिरा हुआ चित्रित किया जाता है। जिनमें गोपियों के सिर पर घड़ा होता है जिसे बालक एवं बालिकाएँ कृष्ण को भेंट कर रहे होते हैं।

© NCERT not to be republished

पिठोरो चित्रकला

गुजरात में पंचमहल क्षेत्र के राठवा भीलों और पड़ोसी राज्य मध्य प्रदेश में झाबुआ में चित्रित इन चित्रों को घरों की दीवारों पर विशेष अवसर या धन्यवाद उत्सवों पर चित्रित किया जाता है। ये बड़े भित्ति चित्र हैं, जहाँ पंक्तियों मे कई भव्य रंगीन देवताओं को घोड़े पर सवार दर्शाया जाता है।

घोड़ा सवार देवताओं की पंक्तियाँ, राठवाओं के ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करती हैं। सबसे ऊपर घुड़सवार देवताओं का खंड, स्वर्गीय निकायों और पौराणिक प्राणियों की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है। एक अलंकृत लहराती रेखा इस खंड को निचले खंड (क्षेत्र) से अलग करती है, जहाँ पिठोरो की शादी की बारात जिसमें गौण देवता, राजाओं, देवियों, एक आदर्श किसान, घरेलू जानवरों इत्यादि को पृथ्वी पर दर्शाया जाता है।

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

पट चित्रकला

चित्रकला का एक और रूप पटचित्र है जिसे कपड़े, ताड़ के पत्ते या कागज़ पर चित्रित किया जाता है। यह देश के विभिन्न हिस्सों, विशेष रूप से पश्चिम में गुजरात और राजस्थान और पूर्व में ओडिशा और बंगाल में प्रचलित कला रूप है। इसे पट, पचीसी, फड़ आदि के नाम भी जाना जाता है।

बंगाल के पट में कपड़े (पट) पर चित्रकारी होती है जो पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों में कहानी कहने का कार्य करते हैं। यह सबसे अधिक सुनने वाली मौखिक परंपरा है, जो लगातार नए विषयों की और दुनिया में प्रमुख घटनाओं पर प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत करती हैं।

लंबवत् चित्रित पट, पटुआ कलाकार द्वारा पट चित्रकला में इस्तेमाल किया जाता है। पटुआ, जिसे चित्रकार भी कहा जाता है। यह मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल के मिदनापुर, बीरभूम और बांकुरा क्षेत्रों के आसपास एवं बिहार और झारखंड के कुछ हिस्सों में बसे समुदायों से संबंधित हैं। पट चित्रण और रखरखाव (संभालना) उनका वंशानुगत पेशा है। वे गाँवों में घूमते हैं, चित्रों को प्रदर्शित करते हैं और चित्रित किए गए आख्यानों को गाते हैं। प्रदर्शन गाँव के साझा (या सामान्य) स्थानों पर होते हैं। पटुआ हर बार तीन से चार कहानियाँ सुनाता है। प्रदर्शन के बाद, पटुआ को नकद या उपहार दिया जाता है।

पुरी पट या चित्रकला, मंदिरों का शहर पुरी, ओडिशा की विख्यात लोक कला है। इसमें शुरुआत में मुख्यतः पट पर चित्रण किया जाता था, लेकिन अब कागज़ पर भी चित्रण किया जाता है। इसमें विभिन्न विषयों का चित्रण किया जाता है, जैसे कि जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के दैनिक और विशेष अवसरों की वेशभूषा (पोशाक), (जैसे— बड़ा शृंगार वेश (परिधान), रघुनाथ वेश, पद्म वेश, कृष्ण-बलराम वेश, हरिहरन वेश आदि); रस चित्र, अंसारा पट्टी (गर्भगृह के देवी-देवताओं का प्रतीकात्मक चित्रण जिन्हें, सफ़ाई और स्नानायात्रा के समय नई रंगाई के लिए हटाया जाता है); जात्री पटी (तीर्थयात्रियों के लिए यादगार के रूप में और उन्हें घर के व्यक्तिगत मंदिरों में रखने के लिए), जगन्नाथ की पौराणिक कथाओं की शृंखलाओं, जैसे—कांची कावेरी पटा और थिया-बड़हिया पटा, मंदिर के हवाई और पार्श्व दृश्य का संयोजन के साथ देवी-देवताओं और मंदिर के आसपास या त्यौहारों का चित्रण किया जाता है।

© NCERT not to be republished

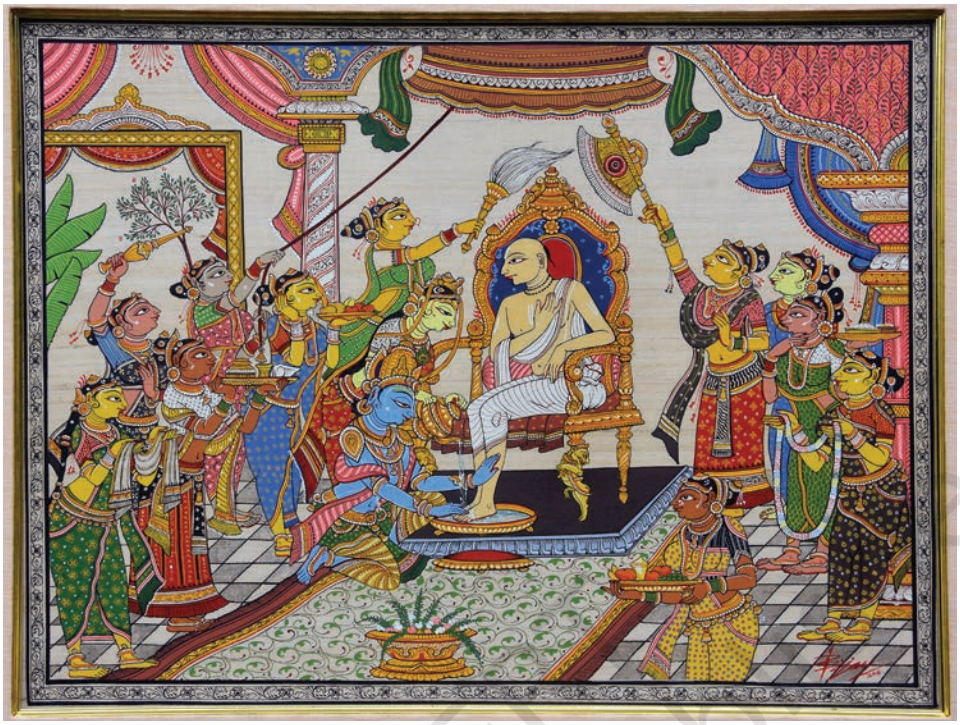

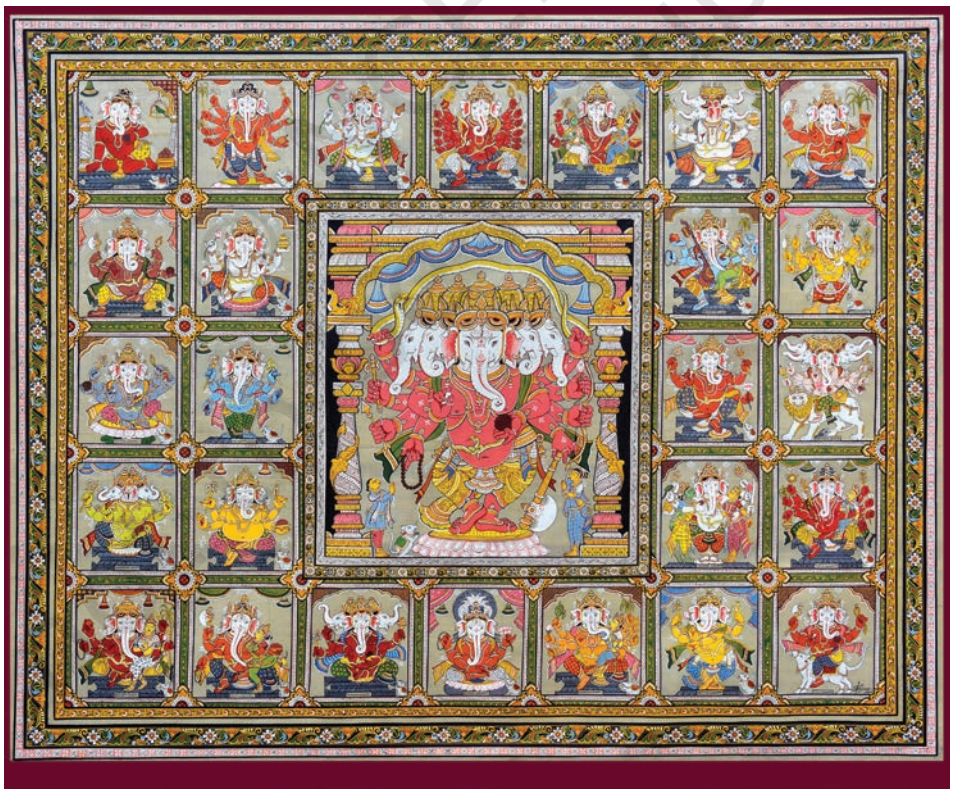

पटचित्रों को सूती कपड़े की छोटी-छोटी पट्टियों या टुकड़ों पर किया जाता है, जिसे मुलायम सफ़ेद पत्थर के चूरन (पाउडर) और इमली के बीजों से बने गोंद के साथ कपड़े के सतह द्वारा तैयार किया जाता है। सबसे पहले किनारों को बनाने की प्रथा है। सीधे तूलिका के उपयोग से आकृतियों की संरचना की जाती है और सपाट रंग भरे जाते हैं। आमतौर पर सफ़ेद, काला, पीला और लाल रंगों का इस्तेमाल किया जाता है। चित्रण पूरा होने के बाद, चित्र को कोयले की आग के ऊपर रखा जाता है और सतह पर लाह को लगाया जाता है जिससे चित्र पानी प्रतिरोधी और चमक उत्पन्न कर सके। रंग, जैविक और स्थानीय रूप से प्राप्त किए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, काला को दीप से, पीला और लाल को क्रमशः हरिताली और हिंगल पत्थर से, सफ़ेद रंग शंख के चूर्ण से प्राप्त किया जाता है। ताड़ की पांडुलिपियों को एक विशेष प्रकार के ताड़, जिसे खर-ताड़ के नाम से जाना जाता है, पर चित्रित किया जाता है। इन पर तूलिका से चित्रण नहीं किया जाता है, बल्कि एक लोहे की कलम से आकृतियों को उकेरा जाता है, फिर स्याही से भरा जाता है और कभी-कभी इनमें रंगों को भी भरा जाता है। इन चित्रों के साथ कुछ लेखन भी संकलन हो सकते हैं। ताड़ पत्र पर चित्रण की कला परंपरा को लोक कला माना जाए या परिष्कृत कला के अंग के रूप में स्वीकार्य किया जाए जिसका संबंध देश के पूर्वी और अन्य हिस्सों की भित्ति और ताड़ पत्र चित्रण की परंपराओं से है, यह एक चर्चा का विषय है।

राजस्थान की फड़ लोक कला

फड़, लंबे, क्षैतिज, कपड़े के पटचित्र होते हैं, जिस पर भीलवाड़ा क्षेत्र के आसपास रहने वाले समुदाय के लोग लोक देवता का चित्रण करते हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य पशुधन को सुरक्षित रखना होता है। इस तरह के विचार उनकी कहानियों, किंवदंतियों और पूजा पद्धतियों में प्रतिबिंबित होते हैं। उनके देवताओं के साथ उन बहादुर वीरों का भी चित्रण किया जाता है, जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान देकर मवेशियों को लुटेरों से बचाया। इन्हें भोमिया कहा जाता है। इन नायकों को उनके कार्यों और बलिदान या शहादत के लिए सम्मानित, पूजा और याद किया जाता है। भोमिया, जैसे— गोगाजी, जेजाजी, देव नारायण, रामदेवजी और पाबूजी की व्यापक पंथ की परंपरा का राबरिया, गुर्जर, मेघवाल, रैगर और अन्य समुदाय के लोग अनुसरण करते हैं।

इन भोमियाओं की वीरतापूर्ण कहानियों को फड़ पर दर्शाते हैं। भोपों यात्रा करते समय अपने साथ फड़ रखते हैं और भोमियों की वीर गाथाएँ या कथाएँ सुनाते समय इन्हें प्रस्तुत करते हैं। भोपों रात भर चलने वाले कथा प्रदर्शनों में इन नायक-देवताओं से जुड़े भक्ति गीत गाते हैं। जिन चित्रों के बारे में बात की जा रही होती है, उन्हें रोशन करने के लिए फड़ के उस अंश पर एक दीपक से प्रकाश किया जाता है।

© NCERT not to be republished

भोपा और उसका साथी रावणनाथ और वीणा जैसे वाद्ययंत्रों के साथ प्रस्तुति करते हैं और गायन की खयाल शैली का गान करते हैं।

हालाँकि, फड़ को भोपों द्वारा चित्रित नहीं किया जाता है। उन्हें पारंपरिक रूप से 'जोशीस' नामक एक जाति द्वारा चित्रित किया जाता है, जो राजस्थान के राजाओं के दरबार में चित्रकार होते थे। राजदरबार इन चित्रकारों को लघुचित्रों के निर्माण के लिए संरक्षण प्रदान करते थे। इसलिए, कुशल व्यवसायी का संघ, कवि संगीतकार और दरबारी कलाकार फड़ को अन्य सांस्कृतिक परंपराओं से उच्च स्थान प्रदान करते हैं।

मूर्तिकला परंपरा

मूर्तिकला परंपरा, मिट्टी (मृण्मूर्ति), धातु और पत्थर से मूर्तियाँ बनाने की लोकप्रिय परंपराओं से संबंधित है। देशभर में ऐसी अनेक लोक कला परंपराएँ हैं। उनमें से कुछ पर यहाँ चर्चा की गई है।

डोकरा कास्टिंग

लोकप्रिय मूर्तिकला परंपराओं में, कांस्य की ढलाई या सेरे पर्दु तकनीक से बनाई गई डोकरा या धातु की मूर्तियाँ छत्तीसगढ़ के बस्तर, मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के मिदनापुर के सबसे प्रमुख धातु शिल्पों में से एक है। इसमें पिघला हुआ मोम विधि के माध्यम से कांस्य की ढलाई सम्मिलित है। बस्तर के धातु कारीगरों को गढ़वा कहा जाता है। लोकप्रिय शब्दावली में 'गढ़वा' शब्द का अर्थ है आकार देना और बनाने की क्रिया। शायद इसी कारण कलाकारों को गढ़वा नाम दिया गया है। परंपरागत रूप से गढ़वा कारीगर ग्रामीणों के दैनिक उपयोग के बरतनों की आपूर्ति के अलावा, आभूषण, स्थानीय रूप से प्रतिष्ठित देवताओं की मूर्ति और मन्नत के चढ़ावा में साँप, हाथी, घोड़े, अनुष्ठान के बरतन आदि का निर्माण करते हैं। इसके बाद समय के साथ समुदाय में बरतन और पारंपरिक आभूषणों की माँग में कमी आने के बाद, इन शिल्पकारों ने नए (गैर-पारंपरिक) रूपों और कई सजावटी वस्तुओं का निर्माण शुरू किया।

डोकरा की ढलाई एक विस्तृत प्रक्रिया है। नदी के किनारे से काली मिट्टी को चावल की भूसी के साथ मिलाकर पानी से गूंधा जाता है। मुख्य आकृति (कोर फ़िगर) या मोल्ड को इसी से बनाया जाता है। सूखने के बाद इस पर गोबर में मिट्टी मिलाकर इसे दूसरी परत से ढक दिया जाता है। साल के पेड़ से एकत्रित राल को तब तक मिट्टी के बरतन में गर्म किया जाता है जब तक कि वह तरल न हो जाए, इसमें कुछ सरसों का तेल भी मिलाकर उबाला जाता है। उबलते तरल को एक कपड़े के माध्यम से छान लिया जाता है और पानी के ऊपर एक धातु के बरतन में इकट्ठा कर रखा जाता है।

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

परिणामस्वरूप राल जम जाता है लेकिन नरम और मुलायम रहता है। फिर इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में अलग कर दिया जाता है, कोयले की धीमी आँच पर इन्हें थोड़ा गर्म किया जाता है और फिर उत्कृष्ट धागे या कुंडल में फैलाया जाता है। ऐसे धागे पट्टियाँ बनाने के लिए एक साथ जुड़ जाते हैं। सूखी मिट्टी के आकार के ऊपर इन राल के पट्टियों या कुंडल को मढ़ा या जोड़ा जाता है और फिर सभी सजावटी विवरण, जैसे— आँखें, नाक आदि को आकृति के साथ बनाया जाता है। उसके बाद मिट्टी के ढाँचे से ढक दिया जाता है। सबसे पहले महीन मिट्टी की परत से, फिर मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण की परत से और अंत में, चावल की भूसी के साथ चींटियों द्वारा बनाए गए मिट्टी के टीलों से प्राप्त मिट्टी की परत चढ़ाते हैं। फिर उसी मिट्टी से बनाए गए एक पात्र को आकृति के निचले हिस्से में जोड़ दिया जाता है। दूसरी तरफ, धातु के टुकड़ों से भरे एक कप को मिट्टी-चावल की भूसी के मिश्रण से बंद कर दिया जाता है। भट्ठी में आग के लिए, साल की लकड़ी या उसके कोयले को ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। धातु युक्त कप को नीचे मिट्टी के साँचे के साथ रखा जाता है और जलाऊ लकड़ी और बरतन से ढक दिया जाता है। धातु को पिघले हुए अवस्था में बदलने के लिए लगभग 2 से 3 घंटे तक हवा को भट्ठी में लगातार भरा या उड़ाया जाता है। साँचे को चिमटे की मदद से बाहर निकाला जाता है, फिर उसे उलटा कर दिया जाता है, इसके साथ एक तेज़ झटका दिया जाता है और धातु को पात्र (रिसेप्टेक) के माध्यम से डाला जाता है। राल के स्थान पर पिघला हुआ धातु प्रवाहित होता है, जो अब तक वाष्पित हो चुका होता है। साँचे को ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है और धातु की छवि को प्रकट करने के लिए मिट्टी की परत को तोड़ दिया जाता है।

मृण्मूर्ति

देशभर में सर्वाधिक प्रचलित सर्वव्यापी मूर्तिकला मृण्मूर्ति (टेराकोटा) है। आमतौर पर कुम्हारों द्वारा बनाए गए मृण्मूर्ति मन्नत की पूर्ति पर स्थानीय देवताओं को चढ़ाए जाते हैं या अनुष्ठान और त्यौहारों के दौरान उपयोग किए जाते हैं। वे नदी किनारे या तालाबों पर पाई जाने वाली स्थानीय मिट्टी से बने होते हैं। मृण्मूर्तियों को स्थायित्व के लिए पकाया जाता है। उत्तर-पूर्व में मणिपुर हो या असम, पश्चिमी भारत में कच्छ, उत्तर में पहाड़ियाँ, दक्षिण में तमिलनाडु, गंगा के मैदान या मध्य भारत हो, विभिन्न क्षेत्रों के लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार की मृण्मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। उन्हें ढाला जाता है, हाथों से बनाया जाता है या कुम्हार के चाक पर बनाया जाता है फिर रंगा या सजाया जाता है। उनके रूप और उद्देश्य अकसर समान होते हैं। वे प्राय: देवी या देवताओं की आकृतियाँ होती हैं, जैसे— गणेश, दुर्गा या स्थानीय देवता, पशु, पक्षी, कीड़े आदि।

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

शब्दकोश

अंतर्राष्ट्रीयवाद — कला की एक प्रवृत्ति जो खुले तौर पर यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका के कला आंदोलनों को स्वीकार करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय कलाकारों ने 1950 के दशक में आधुनिकता से प्रभावित होकर अपने व्यवहार में इसे अपनाया और विश्व के आधुनिक कलाकारों के साथ अपनी सहभागिता दर्ज की।

अकादमिक यथार्थवाद या अकादमिक कला — यूरोपीय अकादमियों या विश्वविद्यालयों के प्रभाव से उत्पन्न चित्रकला और मूर्तिकला की एक शैली है। भारत में यह औपनिवेशिक काल के दौरान आई, जब उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में कला अकादमियों की कलकत्ता (अब कोलकाता) मद्रास (अब चेन्नई) और लाहौर में स्थापना की गई थी।

अमूर्तन और अमूर्त कला — अमूर्त कलाकार रूपाकारों को बहुत सरलीकृत करता है या उन्हें अतिशय रूप में प्रस्तुत करता है जिनका प्रयोग आधुनिक काल में देखा जाता है, यद्यपि वे पहले भी अस्तित्व में थे।

अभिव्यंजनावाद — अभिव्यंजनावाद शब्द कला में तीव्र संवेग को अभिव्यंजित करने वाला शब्द है। अभिव्यंजनावाद एक कलात्मक शैली है, जिसमें कलाकार अपनी भौतिक यथार्थ की अपेक्षा संवेदना या मनोभावों को व्यक्त करता है। अभिव्यंजनावादी कलाकार यथार्थ को अतिरेक के द्वारा विरूपित करते हैं और अपने विचारों और मनोभावों को व्यक्त करने के लिए वे ओजपूर्ण स्पष्ट तूलिका आघात और तीव्र रंगों का प्रयोग करते हैं।

आधुनिकतावाद — एक ऐसी परिघटना है, जिसने मानव जीवन में परिवर्तन एवं सुधार किया। यह विश्वव्यापी प्रतिक्रिया है, जिसने मानव के जीवन में सभी पक्षों को प्रभावित किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अपने आगमन से आधुनिकतावाद ने मानव के सोचने के तरीके को निर्देशित किया है। आधुनिकतावाद की संकल्पना जो मुख्य रूप से एक दर्शन एवं व्यवहार के रूप में विकसित हुई और गैर यूरोपीय देशों— अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया उपनिवेश के साथ वहाँ पर पहुँची।

© NCERT not to be republished

आवां गार्द — 'आवां गार्द' एक फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग उन नवाचारी कलाओं, के लिए प्रयुक्त होता है जो वर्तमान में स्थापित सौंदर्यात्मक मूल्यों, प्रतिमानों एवं राजनीतिक सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करती हैं। भारत में यह राजनैतिक कट्टरपंथी और उदार बुद्धिजीवियों से संबंध रखता है।

एचिंग — वुडकट के विपरीत एचिंग में उभरा हुआ भाग रिक्त रहता है जबकि गहरे भाग में स्याही भरी जाती है। शुद्ध एचिंग में ताँबा, जस्ता और स्टील की प्लेट मोम या एक्रिलिक लेप से ढकी हुई होती है। कलाकार इससे मोम या एक्रिलिक से ढकी हुई सतह पर नुकीली सुई के द्वारा रेखांकन करता है। इसके बाद धातु की प्लेट को नाइट्रिक एसिड या फेरिक क्लोराइड में डुबोया जाता है, जिससे धातु का उघड़ा हुआ भाग अम्ल से प्रक्रिया करके प्लेट पर गहरी रेखाएँ छोड़ देता है। इसके बाद प्लेट के बाकी बचे हुए भाग से मोम या एक्रिलिक के लेप को साफ़ कर दिया जाता है। छापा तैयार करने के लिए इस प्लेट की पूरी सतह पर स्याही लगाई जाती है और फिर उसे पोंछ दिया जाता है। इस प्रकार गहरी रेखाओं में स्याही अवशिष्ट रह जाती है और उभरी सतह साफ़ हो जाती है। इसके बाद प्लेट को उच्च दबाव वाली मशीन पर लगाकर कागज़ की शीट पर दबाया जाता है, इसमें कागज़ को नम कर दिया जाता है जिससे कागज़ मुलायम बना रहे और प्लेट के गहरे भाग में जाकर स्याही को सोख सके और इस प्रकार छापा तैयार हो जाता है। इस विधि को कई बार दोहराकर रेखांकन के कई छापे लेकर अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार की जा सकती हैं।

कलम — चित्रकला की शैली।

कला समीक्षक — वह व्यक्ति, जो कला की रचना कला के मूल्यांकन और उसकी समालोचना करने में प्रवीण है। वह अपने विचारों को सामान्यतः समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, वेबसाइट्स एवं पुस्तकों में प्रकाशित करता है।

केरेसक्युरो — चित्रकला में प्रकाश एवं छाया का प्रयोग।

गौश — गौश चित्रण में अपारदर्शी जलरंग से चित्र बनाने की विधि, जिसमें प्राकृतिक रंग को माध्यम बनाते हैं और कभी-कभी अन्य पदार्थों को मिलाकर चित्रण किया जाता है।

घनवाद — घनवाद एक आंदोलन था जो पाब्लो पिकासो और जार्ज ब्राक द्वारा निर्मित 1907 की रचनाओं से संबंधित था। ये दोनों कलाकार अफ्रीकन पारंपरिक मूर्तिकला एवं पॉल सूज़ा की चित्रकला से बहुत अधिक प्रभावित थे। घनवादी कलाकृतियों में वस्तु को विश्लेषण के लिए विघटित किया जाता है, जहाँ कलाकार वस्तु को एक कोण से दिखाने के बजाय कई कोणों से एक ही सतह पर प्रदर्शित करता है।

© NCERT not to be republished

डिजिटल कलाकार — वह व्यक्ति जो डिजिटल तकनीकों, जैसे— कंप्यूटर, ग्राफ़िक्स, डिजिटल फ़ोटोग्राफ़ी और कंप्यूटर का प्रयोग कला सृजन के लिए करता है, जिसमें कलाकृतियों की बहुल उत्पादन की संभावनाएँ निहित हैं।

देशज कला — कलाएँ और विचार जब किसी व्यक्ति के अपने अतीत, संस्कृति और पारंपरिक व्यवहार से अभिप्रेरित होते हैं और जिनकी जड़ें उनकी अपने अतीत में होती हैं। इस प्रकार की कला को देशज कला कहते हैं।

देहयष्टि मुखाकृति — व्यक्ति के मुखाकृति उसके भाव या उसकी सामान्य प्रतीति। यह किसी वस्तु के लिए भी हो सकता है।

नया माध्यम (न्यू मीडिया) — एक कला रूप जो नई मीडिया तकनीकों के साथ कलाकृतियों का निर्माण करता है। जैसे कि डिजिटल कला, कंप्यूटर ग्राफ़िक्स, आभासी कला और अंतरक्रियात्मक कला प्रविधियाँ आदि। यह अपने आप में चित्रकला और मूर्तिकला जैसे पारंपरिक माध्यमों से एकदम विपरीत है।

नीम कलम — रेखाचित्र।

पिंटाडोज़ — स्पेन की एक चित्रण विधा जिसे शरीर पर भी किया जाता है।

प्रकृतिवाद — विवरण के विशुद्ध चित्रण के आधार पर निरूपण की एक शैली और सिद्धांत।

प्रदर्शन कला — प्रदर्शन कलाओं का जन्म 1970 के दशक में पश्चिम में हुआ था, जब कलाकारों ने स्वयं के जीवंत शरीर को कलाकृति के सृजन में प्रयुक्त किया। उनका प्रदर्शन या तो जीवंत होता है अथवा रिकॉर्डिड जिसके माध्यम से उसे दर्शक के सामने अभिनित किया जाता था।

प्रिंट मेकिंग — यह छापे को तैयार करने की एक विधि है, जिसमें छाया चित्रों के पुनः उत्पादन की अपेक्षा मौलिक सृजनात्मक तत्वों का प्रयोग किया जाता है। इसमें एकल सतह के द्वारा छापा तैयार किया जाता है, जिसे *मेट्रिक्स* कहते हैं। प्रत्येक प्रति प्रतिलिपि नहीं होती है, बल्कि वह एक मौलिक रचना की भाँति समझी जाती है, क्योंकि यह किसी दूसरे कार्य का पुनः उत्पादन नहीं है।

पुनर्जागरण कला — कला की (चित्रकला, मूर्तिकला, अलंकरण एवं स्थापत्य कला) और साहित्य की एक शैली जिसका उदय यूरोप के इटली में 1400 के लगभग हुआ था। इसके अंतर्गत यूनान के प्राचीन शास्त्रीय कलाकृतियों के प्रभाव से यूरोप में कला और स्थापत्य चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के मध्य इसका पुनः आगमन हुआ।

© NCERT not to be republished

पुष्पिका पृष्ठ — यह किसी पुस्तक के प्रकाशन के विषय में प्रकाशन का स्थान, प्रकाशन का नाम, प्रकाशन की दिनांक आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है।

पुस्तक-अनुरागी — पुस्तकों को संग्रहित करने और उनसे प्रेम करने वाला व्यक्ति।

फ़ोलियो या पृष्ठ — किसी ग्रंथ का हिस्सा या वह एकल मृख पृष्ठ जिस पर संख्या अंकित होती है, उसे फोलियो कहते हैं।

भम्रवाद — एक प्रकार की शैली है जिसमें कलात्मक प्रतिरूपण इस प्रकार किया जाता है कि वह यथार्थ से बिलकुल साम्य रखता हुआ दिखाई देता है।

भित्ति चित्र — एक कला जिसे सीधे भित्ति, छत या किसी द्वि-आयामी विशाल सतह पर सृजित किया जाता है। यह प्राचीनतम कला का एक रूप है, जिसकी प्राचीनता प्रागैतिहासिक गुफाओं तक है।

मंडी — थोक व्यापार के लिए स्थानीय बाज़ार।

मर्मज्ञ या पारखी — वह व्यक्ति जो कला, भोजन एवं पेय के विषय में गहन ज्ञान रखता है एवं उसमें गहरी रुचि लेता है।

यथार्थवाद — उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में उद्भूत एक कला आंदोलन।

रहस्यवाद — धार्मिक अनुष्ठान, जिनमें वैचारिक, नैतिक, अनुष्ठान, मिथक, जादू, किंवदंती आदि तत्व निहित होते हैं।

लिथोग्राफ़ी — यह चित्रकला की एक विधि है, जिसका उदय अठाहरवीं शताब्दी के अंत में हुआ था। लिथोग्राफ़ी में सरंध्र सतह को लिथोग्राफ़ी बनाने के लिए प्रयोग किया जाता, जो सामान्यत: चूने के पत्थर से बनी होती है, चूने के पत्थर पर आकृति को तैलीय माध्यम से रेखांकित करते हैं। फिर उसके ऊपर अम्ल लगाया जाता है, जिससे तैलीय पदार्थ (ग्रीज़) चूने के पत्थर पर स्थानांतरित हो जाए। इसके बाद सरेस या गोंद जैसे पदार्थ जो पानी में घुलनशील होता है, उसे लेप दिया जाता है। यह लेप चूने के पत्थर के रिक्त स्थान पर जहाँ ग्रीज़ नहीं होता है, वहाँ जम जाता है, जिसे बाद में नर्म कागज़ पर दबाव डालकर छाप लिया जाता है।

© NCERT not to be republished

लीनोकट — एक उभार युक्त मुद्रण प्रक्रिया जिसमें लिनोलियम की एक पतली चादर (सतह) का प्रयोग किया जाता है (इसे लकड़ी के ब्लॉक पर भी चढ़ाया जा सकता है)। कोमल माध्यम होने के कारण इसे सरलता से (उत्कीर्ण) उकेरा जा सकता है।

लोकप्रिय कला — कला का वह स्वरूप है जिसे तकनीक के द्वारा किसी कला की पुन: कापी को बहुल संख्या में उत्पादित किया जा सकता और अनेक प्रतिलिपियों में उत्पादित किया जाता है, जो विशाल जनसमूह के लिए सरलता से उपलब्ध होती है। इसका एक उदाहरण कलैंडर आर्ट भी है। प्रसिद्ध कलाकार उच्च कला से संबंधित होते हैं। अपने कार्यों को कला दीर्घा में प्रदर्शित करते हैं, लेकिन उनकी कला की विषयवस्तु दैनिक जीवन से ली गई होती है।

वीडियो कला — वीडियो कला में गतिज आकृतियों का श्रव्य आँकड़ों के बिना या साथ में प्रयोग किया जाता है। इसका उदय 1960 या 1970 के दशक में पश्चिम में हुआ और भारत में यह सन् 2000 के आसपास लोकप्रिय हुई।

शैली — कला, संगीत एवं साहित्य की शैली है।

संग्रहाध्यक्ष (क्यूरेटर) — परंपरागत रूप से एक सांस्कृतिक धरोहर संस्थान (जैसे— पुरा लेखागार, पुस्तकालय, संग्रहालय या उपवन) का रखरखाव (निरीक्षक) करने वालों को कहते हैं। समकालीन कला में संग्रहाध्यक्ष वह व्यक्ति है जो किसी निर्दिष्ट विषयवस्तु पर कलाकृतियों के प्रदर्शन की नीति या प्रविधि को निर्धारित करता है। संग्रहाध्यक्ष से दर्शक को संबोधित करने की अपेक्षा की जाती है। इसलिए प्रदर्शनी के लिए सूचक पत्र, लेख, सूची, सहायक सामग्री तैयार करना उसका दायित्व है।

सामुदायिक कला — किसी समुदाय के स्थित चातुर्दिक संगठित कला को कहते हैं। इसमें उस समुदाय के अंतःक्रिया और संवाद को चारित्रिक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग 1960 के अंतिम दशक में प्रयुक्त हुआ। जब संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, युनाईटेड किंगडम, आयरलैंड और आस्ट्रेलिया में यह एक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। भारत में नवजोत अल्ताफ और के.पी. सोमन जैसे दो हज़ार कलाकार इसमें शमिल थे। इन लोगों ने स्थानीय समुदाय के साथ सामाजिक विषयवस्तु, जैसे— शोषण, ग्रामीण एवं शहरी भेद और जाति असमानता पर कार्य किया।

© NCERT not to be republished

स्थापन कला — समकालीन कला का एक प्रकार जो परंपरागत माध्यम, जैसे— चित्रकला, मूर्तिकला से भिन्न न होते हुए भी अपनी रचना में अनेक विभिन्न मिश्रित पदार्थों को सम्मिलित करता है और स्थान तथा रूप के प्रत्यय को यथार्थ रूप में रूपांतरित करता है। इसमें दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों, जैसे— प्रविधि, वीडियो, इंटरनेट आदि का उपयोग दर्शक के स्नायु पर दृष्टिगत प्रभाव डालने के लिए किया जाता है।

स्फुमातो — एक तकनीक है जिसमें रंग एवं उनकी आभाएँ एक-दूसरे में धीरे-धीरे विलीन हो जाती हैं और आकृति की बाह्य रेखाएँ कोमल हो जाती हैं, जिससे रूपाकार धुँधले से प्रतीत होते हैं।

स्थिति जन्य लघुता — किसी वस्तु का अंकन इस प्रकार किया जाए कि वह अपने वास्तविक दूरी की अपेक्षा कम दूरी या अधिक दूरी के प्रभाव को एक विशेष परिप्रेक्ष्य या परिदृश्य के एक कोण को प्रदर्शित करे।

सौंदर्य शास्त्री — वह व्यक्ति, जो कला और सौंदर्य की सराहना करता है और इसके प्रति संवेदनशील है।

© NCERT not to be republished

ग्रंथ सूची

आर्चर, डब्ल्यू. जी. 1959. *इंडिया एंड मॉडर्न आर्ट*. जॉर्ज ऐलन और अनविन, लंदन.

क्रेवन, जूनियर और सी. रॉय (संपादक). 1990. *रामायण पहाड़ी पेंटिंग*. मार्ग प्रकाशन, बॉम्बे.

क्रैमरिक, स्टेला. 1975. *इंडियन पेंटिंग्स फ्रॉम द पंजाब हिल्स— ए सर्वे एंड हिस्ट्री ऑफ़ पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग्स*. वॉल्यूम I और II. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

गुरु, आशा. 2009. *मॉडर्न एंड कंटेम्परारी इंडियन आर्ट*. आशा गुरु, मुंबई.

गोस्वामी, बी. एन. और ई. फिशर. 1992. *पहाड़ी मास्टर्स— कोर्ट पेंटर्स ऑफ़ नॉर्दन इंडियन*. आर्टबस एशिया पब्लिशर सप्लीमेंटम XXXVIII एंड म्यूज़ियम रीटबर्ग ज्यूरिख, स्विट्ज़रलैंड.

चक्रवर्ती, अंजन. 2005. *इंडियन मिनिएचर पेंटिंग*. रोली बुक्स, नई दिल्ली.

जेब्रोस्की, मार्क. 1983. *दक्कन पेंटिंग*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले.

टैगोर, रवींद्रनाथ. 1997. *शांतिनिकेतन— द मेकिंग ऑफ़ कॉन्टेक्चुअल मॉडर्निज़्म*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली.

डालमिया, यशोधर. 2001. *द मेकिंग ऑफ़ मॉडर्न इंडियन आर्ट— द प्रोग्रेसिव*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

द्विवेदी, वी. पी. 1980. *बाराहमासा— द सोंग ऑफ़ सीज़न इन लिटरेचर एंड आर्ट*. अगम कला प्रकाशन, दिल्ली

बीच, मिलो क्लीवलैंड. 1992. *मुगल एंड राजपूत पेंटिंग*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, यू.के.

मागो, प्राण नाथ. 2001. *कंटेम्परारी आर्ट इन इंडिया— ए पर्सपेक्टिव*. सौमित्र मोहन (अनुवादक). 2006. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. नई दिल्ली.

मितर, पार्थ. 1994. *आर्ट एंड नेशनलिज़्म इन कोलोनियल इंडिया (1850–1922)*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, इंग्लैंड.

_____. 2001. *इंडियन आर्ट*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.के.

_____. 2007. *द ट्राइम्फ़ ऑफ़ मॉडर्निज़्म— इंडियाज़ आर्टिस्ट्स एंड द अवंत गार्डे (1922–47)*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

© NCERT not to be republished

रंधावा, एम. एस. 1959. *बसोहली पेंटिंग*. प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली.

_____. 1960. *कांगड़ा पेंटिंग ऑफ़ भागवत पुराण*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली.

_____. 1962. *कांगड़ा पेंटिंग ऑन लव*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली.

_____. 1971. *कांगड़ा रागमाला पेंटिंग*. राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली.

_____. 1972. *कांगड़ा वैली पेंटिंग*. प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली.

रंधावा, एम. एस. और जॉन केनेथ गालब्रेथ. 1968. *इंडियन पेंटिंग— द सिएन, थीम्स एंड लेजेंड्स*. ऑक्सफ़ोर्ड और आई.बी.एच. प्रकाशक कंपनी, कलकत्ता.

सिन्हा, गायत्री. 2003. *इंडियन आर्ट— एन ओवरव्यू*. रूपा, नई दिल्ली, इंडिया.

सेन, गीति. 2001. *आर्ट इन इंडिया*. मैक्समुलर भवन, नई दिल्ली, इंडिया.

© NCERT not to be republished